वीर तपस्वी—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे,
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ।

संपादकः—
मुनि श्री छोगालालजी म०
"आत्मार्थी"

* श्री वीराय नमः *

वीर-तपस्वी

[तपस्वीराज श्री छब्बालालजी महाराज सा० की—
संक्षिप्त जीवनी]

सम्पादकः—

स्वयं काशी मजैनाचार्य, शास्त्रविशारद, सर्वगुणगणालंकृत आचार्य-
पुत्रों के वध को अनुमोदित पूज्य श्री १००८ श्री खूबचन्दजी
श्री ज्वलन्त उ० सा० के सुशिष्य मनोहर व्याख्यानी पं० रत्न
श्री कस्तूरचन्दजी म० सा० के
सुशिष्य मुनि श्री छोगालालजी
महाराज "आत्मार्थी"

लेखक—

श्री० पं० गुलजारीलालजी चौधरी, उदयपुर (मेवाड़)

प्रकाशक—

मेघराजजी बबूरमलजी धाकड़
बड़ीसादड़ी (मेवाड़)

प्रथमावृत्ति १०००	वीर संवत् २४७२	मूल्य आत्म-सुधार

मेरा आग्रह

यह पुस्तक मुनि श्री छोगालालजी म० सा० की प्रेरणा से मेरे द्वारा लिखी जाकर पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित की जा रही है। इसको संग्रह करने एवं सम्पादन करने का कष्ट उक्त मुनिश्री ने उठाया और उन्हीं की प्रबल प्रेरणा से यह शीघ्र तैयार हो सकी। अतः मैं उनका कृतज्ञ तो हूं [illegible] में श्रीमान् पं० रत्न मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० का [illegible] जिन्होंने समय न होते हुए भी समय निकाल कर इस पुस्तक [illegible] कर यथास्थान संशोधन करा दिया। जिससे पुस्तक की रोचकता [illegible] बढ़ गई है।

प्रकाशक द्वारा शीघ्रता होने से यह पुस्तक अल्प समय में लिखी गई है। अतः त्रुटियाँ रहना सम्भव है. उन्हें शुद्ध कर पठन करने की कृपा करें।

विनीत—

गुलजारीलाल चौधरी

प्रकाशकीय निवेदन

यह भारत पुण्य-भूमि है। इसका प्राकृतिक सौन्दर्य तो अपूर्व है ही, जिसकी उपमा संसार के किसी भी देश से नहीं हो सकती। यह अनुपम सौन्दर्य वाला देश केवल इसीसे ही प्रसिद्ध हो, यह बात नहीं है। पर इसकी प्रसिद्धि का प्रधान कारण त्याग, तपस्तेज, स्वदेशानुराग एवम् आदर्श बन्धु प्रेम ही है। इसीलिए इस देश की अनेक वीराङ्गनाओं ने स्वदेशानुराग से प्रेरित होकर शीलधर्म की रक्षार्थ अग्नि में प्रवेश कर, सहर्ष प्राण अर्पण कर देश का मुख उज्ज्वल किया है। वैसे ही कई हजारों वीर त्यागी महापुरुषों ने देश-हित युद्ध के मैदान में भिड़ कर अपने प्राणों की आहुती दी एवं धर्म-प्राण सज्जनों ने धर्म की रक्षार्थ स्वयं का बलिदान तो किया ही, पर यहां तक कि अपने समक्ष अपने प्राणप्यारे पुत्रों के वध को भी देखा। ये सब धर्म और देश के प्रति अत्यन्त प्रेमानुराग के ही ज्वलन्त उदाहरण हैं।

इस असार संसार को त्यागने के प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे निर्ग्रंथ परम-तपस्वी, त्यागी वैरागी, जैन मुनि हैं। जिन्होंने संसार से मोह तो छोड़ा ही पर वे अपने शरीर से भी ममता रहित होते हैं। वे किसी भी तरह की सांसारिक ममता मोह को पास नहीं फटकने देते हैं। ये तो केवल दिन-रात अपने आत्म ध्यान में मग्न रह कर श्रावकों को उपदेशामृत का पान कराते हैं। इसीके उदाहरण स्वरूप वर्तमान मुनि समुदाय है। जो उग्र तपस्या द्वारा अपनी आत्मा में निर्मल ज्योति प्रकट कर रहे हैं।

इस साल (२००२) में तपस्वीराज का चातुर्मास उदयपुर में श्रीमान् पं० रत्न मुनि श्री १००८ श्री किस्तूरचन्दजी महाराज साहब के साथ हुआ है। उक्त मुनि श्री शास्त्रज्ञ, गम्भीर सुज्ञानी, शान्त-दान्त प्रसन्नमुख और परम प्रतापी हैं। आपके साथ में मुनि श्री प्रेमचन्दजी म० सा० भी बड़े आत्मानंदी और जिन गुणानुरागी हैं। आपका अधिक समय जिन भगवान के गुणानुवाद में ही बीतता है

इस पुस्तक के सम्पादक श्रीमान् मुनि श्री छोगालालजी म० सा० है आपका साहित्य प्रेम अपूर्व है। शास्त्रों के अभ्यास में दत्त-चित्त, बड़े गम्भीर, विनयी, सुशील एवं साधु-स्वभावी हैं।

इस पुस्तक में एक साधु-वृत्ति, तपस्वी की संक्षिप्त जीवनी है। इसके चार-मास प्रकरण से ही उनकी असली तपस्या का दिग्दर्शन होता है, वही अनुकरणीय है। उन्होंने अपने जीवन का ध्येय ही वैयावृत्त, सेवा, तप और आत्म-ध्यान करना ही बना लिया है। अतः अन्य साधारण जनता भी इनके जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें इसी उद्देश्य से यह सङ्कलन भव्य जीवों के हितार्थ प्रकाशित किया गया है जिसे पढ़ कर अपनी आत्मा को सत्पथ की ओर अग्रसर कर सकें।

अन्त में, श्रीमान् पं० रत्न मुनि श्री १००८ श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० का भी बड़ा उपकृतज्ञ हू जिनकी सुकृपा से उक्त मुनि श्री ने इस जीवनी का सम्पादन कर दिया। अतः भविष्य में आपसे अनेक आशाएँ हैं।

साथ ही में पं० गुलजारीलालजी चौधरी का भी आभारी हूँ जो इस पुस्तक के लेखक हैं। आप हिन्दी के सुलेखक, एवं धर्म शास्त्र के अच्छे ज्ञाता है।

—प्रकाशक

निम्न दानी सज्जनों ने धार्मिक सहायता कर अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग सत्साहित्य के प्रकाशन में किया अतः उनको अत्यन्त हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करता हू और आशा करता हू कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार की उदारता दिखलाते रहेंगे

७५) श्री मेघराजजी बबूरमलजी धाकड़, बड़ीसादड़ी (मेवाड़)
५०) श्री सेठ धनराजजी उदयलालजी कर्णावट, पीपाड़ (मारवाड़)
५०) श्रीमती धर्मपत्नी लाला लोटनमलजी सुजन्ती (देहली)
२५) श्रीमती धर्मपत्नी बा० मेहरचन्दजी सा० वकील, गुड़गावां (पंजाब)

—लेखक

ॐ *

आदर्श तपस्वी

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमः प्रभुः ।
मङ्गलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मङ्गलम् ॥

❀ प्रथम प्रकरण ❀

वंश परिचय एवं जन्म

दसौर मालवा में श्रीयुत् हुक्मीचन्दजी बीसा पोरवार जातीय कपड़े के साधारण व्यापारी थे। परिवार में पति पत्नि ये ही दोनों प्राणी थे। तीसरे प्राणी की दोनों को बड़ी प्रबल इच्छा थी। तदनुसार जब इनकी आयु २५ वर्ष की हुई, तब संवत् १९३३ की ज्येष्ठ शुक्ला १ को प्रभात के शुभ मुहूर्त में चाईबाई की कुक्षि से एक बालक ने जन्म लिया। पिता ने अपनी पहली सन्तान होने से पुत्र जन्मोत्सव मनाया, खूब खुशी मनाई गई। ज्योतिषी ने आकर बालक का नाम "छब्बालाल" रखा। जन्म कुण्डली बनाई गई। ज्योतिषी ने बालक के जन्म ग्रहों को देखकर कहा कि "यह बालक आपके घर में दिव्य ज्योति लेकर आया है, जिसका प्रकाश प्रौढावस्था में होगा। यदि गृहस्थावस्था में रह गया तो उच्च पद को पावेगा और न रहा तो एक अलौकिक छटा धारण करेगा।" कहना न होगा कि उक्त ज्योतिषी का कथन अक्षरशः सत्य निकला।

अब यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि इनके इतने तपस्वी बनने में इनके माता पिता के सुसंस्कार ही प्रधान कारण हैं। इसीसे बालक भी संस्कारी हुआ। जिसने अपने माता पिता के नाम को रोशन कर अपनी आत्मा का उद्धार किया।

इनके पिता का नाम हुक्मीचन्द्रजी था, वे धर्मात्मा, न्याय परायण, ईमानदार और साधुसेवी थे, साथमें समाज एवं धर्मशास्त्र के भी ज्ञाता थे। वे प्रतिदिन सामायिक किये बिना भोजन नहीं करते थे। अष्टमी और चतुर्दशी का पौषध व प्रतिक्रमण करना तो मानो हमेशा का व्रत था। उन्हें इन कार्यों में खूब रुचि रहती थी। उनके विचार सदा परोपकार के रहते थे, वे सदा अपना दरवाजा दान देने के लिये खुला रखते थे। जब उनके यहां से कोई सुसाधु गोचरी ले जाता था तो वे अपने को धन्य मानते हुए बड़े हर्षित होकर कहते थे कि "आज मेरे पुण्य का उदय हुआ, जिससे मेरा यह घर पवित्र हो गया, मेरा प्रयत्न सफल होगया। इसलिये आज मुझे धर्मध्यान में और अधिक प्रवृत्ति करनी चाहिये। जिससे मेरा जीवन सफल हो सके। इसके अतिरिक्त व्याख्यान श्रवण करने में उनकी रुचि इतनी तीव्र रहती थी कि गहन से गहन विषय को आसानी से समझ लेते थे। जिन विषयों के व्याख्यानों में अन्य श्रोतागण ऊंघा करते, उन विषयों को वे श्रवण कर, सामायिक में उन पर विचार कर, उनके अनुसार चलने का प्रयत्न करते थे। इससे उस नगर में आने वाले सभी मुनि महाराज एवं महासतियाँजी महाराजों में उनकी पूछ थी। वे ज्ञानी, जानकार श्रावक के नाम से प्रसिद्ध थे। कारण कि शास्त्रीय ज्ञान भी उनको काफी था।

इन्हींके अनुरूप उनकी पत्नी चाईबाई थी जैसा उनका नाम था, वैसा ही उनका काम था। अर्थात् वे अपने नाम के अनुसार ऐसे सुयोग्य पति को पाकर फूली नहीं समाती थी। ये भी सदा दान करने मे तत्पर रहती थी। अपने घर से किसीको निराश होकर जाने देना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। अतः इनने भी सुश्राविका के नाम से प्रसिद्धि पाई थी। वे धार्मिक कार्यों में अग्रसर रहती थीं और चातुर्मास के दिनोंमें तो मानो वे अन्न से घृणा ही करने लगती थीं। तपस्या में ही मग्न रहती थी। व्याख्यान सुनने में तो कभी नागा पड़ती ही नहीं थी। यहाँ पर यह बता देना अनुचित न होगा कि वे आजकल की श्राविकाओं की तरह व्याख्यान सुनने जाने के लिए जल्दी से काम करने में अयत्नाचार नहीं करती थीं। किन्तु बड़े यत्नाचार से पानी छानना, कचरा

निकालना, रसोई बनाना आदि सभी कार्य करती थी। यहाँ तक कि वे अपने ही हाथ से स्वास्थ्य वर्द्धक आटे को तैयार करती थी। जिससे आजकल की स्त्रियाँ घृणा करती है। वे परिश्रम करने से कभी नहीं डरती थी, वे स्वयं परिश्रमशीला थी। इससे उनका स्वास्थ्य ईर्ष्या करने योग्य था। अतः उन्हें कभी भी दवाई की चाह नही रहती थी। उनने इतनी लम्बी उमर की थी, पर कभी भी दवाई नहीं ली। यथार्थ मे सत्य बात तो यह है कि "जो मनुष्य नियमित रूप से परिश्रम कर नियमित आहार-विहार का सेवन करता है, प्राकृतिक नियमों का आदी होता है, उसके पास रोग आते हुए डरते हैं। कारण कि वे वैद्य डॉक्टरों के दुश्मन होते हैं। यही कारण है कि वे अन्य मनुष्यों के आदर्श होते हैं।

चाईबाई निम्न श्लोक के अनुसार कार्य करती थीं, वे पढ़ी लिखीं तो न थीं; पर स्त्रियोचित गुण उनमें विद्यमान थे—

> कार्ये दासी, रतौ रम्भा, भोजने जननी समा।
> विपत्तौ बुद्धि धात्री च, सा भार्यातिदुर्लभा॥

अर्थात् कार्य करने मे दासी, रति समय रम्भा, भोजन कराते समय माता के समान, और विपत्ति मे बुद्धिमती धात्री के समान कार्य करती थी। अतः ऐसी पत्नी का प्राप्त होना कठिन हैं। इसीसे वे इन गुणों को अपनाने की सदा इच्छुक रहती थी। उनकी सदा यही भावना रहती थी कि किसी भी तरह हो मेरे आराध्य पति को जरा भी कष्ट न होने पावे, वे मेरे कारण किसी भी कष्ट का अनुभव तो नहीं करते है, मै उनके कार्यों में बाधक तो नहीं होती हूँ, वे मुझे किस दृष्टि से देखते हैं? मै उनकी दृष्टि मे गिरी तो नहीं हूँ? यदि मैं ऐसी हुई तो मेरी स्त्रीपर्याय पाने को धन्य है। अन्यथा मुझे धिक्कार है। क्या आजकल की हमारी सुगृहिणी इनके जीवन से कुछ सीखेंगी? क्या अपने मे कुछ परिवर्तन कर घर में शांति का बीज वपन करेंगीं? क्या अपने घर वालों की सेवा की ओर कुछ ध्यान देंगी? क्या अपने स्वार्थपूर्ण जीवन को परोपकार युक्त बनावेंगी। अतः इनके माता-पिता के संस्कारी होनेसे इन महात्मा मे भी वेही

संस्कार आगये हैं। कहा भी है कि "जो शिक्षा सौ गुरु नहीं दे सकते है वह शिक्षा एक सुमाता अपने स्तनपान के साथ दे देती है, धन्य है ऐसी सुमाता को।

बाल्यकाल

बालक छब्बालालजी अपने माता पिता को सुख उत्पन्न करते हुए दूज के चन्द्र समान बढ़ने लगे। ये माता पिता को तो प्रिय थे ही, मगर पुरा-पड़ौस वालों को ज्यादा प्रिय थे, वे इन्हे घण्टों खेलाया करते थे। न मालूम इस बालक में ऐसा क्या आकर्षण था? इस बालक के गुण पालने में ही प्रकट होने लगे थे। और मनुष्यों को ज्ञात होने लगा था कि- "ये महापुरुष होंगे अपनी माता की कुक्षी को सफल करेंगे, स्वयं अनेक जीवों का उद्धार करते हुए अपनी यश पताका संसार में फहरावेंगे।" धन्य है ऐसे गुणवान बालक को। बड़े होने पर भी आपकी प्रवृत्ति सदा शुभ कामों मे लगी रहती थी। इन्हे खेल भी ऐसे ही पसन्द थे, जिनसे किसी को किसी प्रकार का दुख न हो। वे झूठ आदि दुर्गुणों की ओर बिलकुल प्रवृत्ति न करते थे। आगे पढ़िये—

बालक छब्बालालजी अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान होने से विशेष लाड़-चाव से बड़े होने लगे। ऐसा कहा जाता है कि महापुरुष एकाएक नहीं बनते हैं, वे अपने साथ पूर्व-भव के विशिष्ट संस्कार कतिपय विशेषताएँ लेकर अवतीर्ण होते हैं। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार हमारे चरित्र-नायक में बाल्यावस्था से ही कुछ विशेषताएँ थीं। इनका चहरा इतना आकर्षक था कि जो कोई भी इनको देखता, वह इनको गोद में लेकर खेलाने का प्रयत्न करता। इनकी माता इनको सौंदर्य की प्रतिमा तथा भोलेपन की मूर्ति समझ कर अपने आप को यशोदा का अनुभव करती हुई हृदय में खुशी का स्रोत बहाती था।

जब बालक छब्बालालजी पांच वर्ष के हुए तब इनके पिता ने इनको एक साधारण पाठशाला में विद्याभ्यास कराने का निश्चय किया। किन्तु माता के

विशेष प्यार से उनको अपना निश्चय बदलना पड़ा। और ७ वर्ष की आयु में इनको पाठशाला में भेजा।

पाठशाला में अन्य साथियों के साथ इनका मन नहीं लगता था, इनको अपनी माता से अलग रहना बुरा लगता था। ये कक्षा में बैठे-बैठे यही सोचा करते थे कि कब छुट्टी मिले और कब घर पहुँच कर माँ के पास बैठूं? इसी प्रकार ये रात में भी माँ के पास बैठ जाते और जब तक नींद नहीं आती, धार्मिक कहानियाँ सुना करते थे। इनकी माता विशेष शिक्षित नहीं होने पर भी अपना मातृ-कर्त्तव्य पूर्ण रूप से समझती थीं। और यह जानती थीं बच्चे का भावी जीवन माता की शिक्षा पर ही निर्भर है। इसी से वे स्वयं भी बहुत दिलचस्पी से सन्ध्या समय बालक को सुन्दर धार्मिक कहानियाँ सुनातीं थीं। इसका बालक पर क्या असर हुआ, यह हमें इसी पुस्तक से विदित होगा।

वर्तमान समय में हमारी माताएँ मूर्खा एवम् अशिक्षित हैं' उन्हें अपनी सन्तान के भावी जीवन का जरा भी ध्यान नहीं हैं। उन्हें यह तो ज्ञात है कि अच्छा आभूषण कौनसा कहाँ पर मिलता है बढ़िया कपड़ा कहाँ से आता है? वे अपनी सन्तान को यह सिखाया करती हैं कि 'अरे! नाना देख जब तू बड़ा होगा तो अच्छी गोरी, खुबसूरत नानी सी लाडी ब्याह दूंगी, तेरे बच्चे यानि पोते का मुख देखकर हमारा जीवन सफल होगा। इसी प्रकार कन्या से भी बातें करती हैं कि तेरे अच्छा बींद (पति) खोजूंगी, जो कन्हैया जैसा हो, खूब सोने के जेवर लाकर तुझे चढ़ावेगा, अच्छे बढ़िया कपड़े लाकर देगा। इस प्रकार बालक-बालिकाओं को कह कर उनके भावी जीवन को भोग-विलास मय बना देती है। उन पर इसका कितना घातक प्रभाव पड़ता है, यह तो मानों उन्हें ज्ञात ही नहीं है। यही कारण है कि आजकल के बच्चे विलासी, निकम्मे, बलहीन दीखते हैं। डर तो मानो उनमें मिल ही गया है, यह सब क्यों? जब छोटी वय में बच्चे रोते हैं तो माता उन्हें चुप करने के लिये डराया करती हैं, अरे! देख उस खिड़की में से काले मुंह का बन्दर आया, हउआ आया, बाबा आया, इससे बच्चे का हृदय कमजोर हो जाता है, सदा के लिये डर उनका साथी हो जाता है। इसका मुख्य कारण हमारी माताएँ ही हैं।

कोई भी माता अपने बच्चे को बलवान बनाने, वीर बनाने, धर्मात्मा, त्यागी और परोपकारी बनाने की चेष्टा नहीं करती। इस प्रकार के विचार ही उनके मन में नहीं होते हैं। लेकिन संसार में जितने भी महापुरुष हो चुके हैं, उनकी जीवनी से ज्ञात होता है कि उन पर उनकी माता की अमिट छाप है। उदाहरण के लिये शिवाजी, नैपोलियन बोनापार्ट आदि हैं, जिनकी माता ने अपने ओजस्वी एवम् तेजस्वी जीवन की छाप इन बच्चों पर पटकी थी इसीसे इनने संसार में अपना नाम अमर किया। गांधीजी पर उनकी माता के धार्मिक जीवन की ही छाप है। यही कारण है कि वे आज अपने त्यागमय जीवन से भारत में ही नहीं, संसार में अहिंसा का संदेश सुना रहे हैं। अस्तु

माता के विशेष स्नेह के कारण छब्बालालजी बचपन में ही दब्बू और शान्त स्वभावी बन गये। क्या घर, क्या बाहर, या साथियों के साथ खेलते हुए, क्या पाठशाला में, कहीं भी इन्होंने उद्दंडता नहीं बतलाई। बाहर और पाठशाला में अन्य शरारती लड़के इनको भीरु समझकर बहुधा इनका मजाक किया करते थे। किन्तु ये सब बातें बिना कुछ महसूस किये चुपचाप सह लेते थे। स्वयं अध्यापक महोदय भी, जब इनको पीटते तब ये शान्ति के साथ चुपचाप सिर झुकाये बिना तनिक भी क्रोध का प्रदर्शन किये खड़े रहते तो अध्यापक महाशय भी दङ्ग रह जाते थे। इन्हीं शान्त, धैर्य गम्भीरता आदि गुणों के कारण ये गुरुजी के प्रिय छात्र बन गये। और सदा उनकी आज्ञा का पालन करते रहे।

उस समय स्थान २ पर आजकल जैसे विद्यालय या पाठशालाएँ नहीं थीं। न शिक्षा का इतना महत्व ही था। इसलिये बालक छब्बालालजी ने आवश्यक व्यवसायिक पढ़ाई-लिखाई का ज्ञान कर लिया। और फिर पाठशाला छोड़ दी। इस समय तक इनके दो छोटे भाई भी जन्म ले चुके थे, उनके नाम शिवलालजी और रतनलालजी था। अब इनका स्थान उन दोनों ने लिया अर्थात् पढ़ने जाने लगे। वे दोनों भाई भी छब्बू भाई की तरह ही सुशील थे, पढ़ने लिखने में चतुर थे।

गृहस्थ-जीवन

पाठशाला छोड़ कर पन्द्रह वर्ष की उम्र में इन्होंने अपने पिता के कारोबार में सहायता देना प्रारंभ कर दिया। ये पिता के व्यवसाय को भी समुन्नत करने का प्रयत्न करने लगे। इनके पिता इनकी कुशलता को देख कर मन ही मन भाग्य की सराहना करते थे। वे सोचने लगे कि पुत्र अब काफी होशयार हो गया है। इससे इनकी माता की एक लालसा थी जो कि जन साधारण में पाई जाती है। वह यह थी कि नववधू घर में आवे और पौत्र का मुख देखें। इसी विचार से छोटी वय में ही इनका विवाह मन्दसौर ही में कर दिया गया। इनकी पत्नी भी शान्त स्वभाव की आदर्श गृहिणी थी। नव दम्पति में अतीव प्रेम था। वे एक दूसरे को प्रसन्न देख अपने २ भाग्य की सराहना करते थे। और यह भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि एक के स्वर्गवास ने दूसरे के जीवन में ज्ञान का विकास कर दिया।

ये अपना गृहस्थ जीवन बड़े आराम से व्यतीत कर रहे थे कि २३ वर्ष की अवस्था में ही इनकी प्रिय माता चाईबाई का स्वर्गवास हो गया। उनके स्वर्गवास होने से इनको तथा इनके वृद्ध पिता को गहरी चोट लगी। जिससे इनके पिता तो गृहस्थी का सारा भार इन्हीं पर छोड़ कर अपने पैतृक स्थान दाहोद चले गये। दूकान का सारा कार्य इन्हीं पर आपड़ा। अपने हृदय को सान्त्वना देते हुए इन्होंने अपनी जिम्मेदारी पर दूकान के कार्य को संभाला। इनका व्यापार भी ठीक चल निकला। परन्तु अपने भोलेपन तथा दब्बू एवं शान्त स्वभाव के कारण इनको जैसी चाहिये वैसी सफलता न मिली। बहुधा ग्राहक इनसे कपड़ा उधार ले जाते थे। और वापिस रुपया बिना मांगे देने का नाम नहीं लेते थे। लड़ना-झगड़ना तो जैसे जन्म से ही इनके हिस्से में बटा ही नहीं था। ये कभी ग्राहकों से जाकर दाम के लिये झगड़ा नहीं करते थे। अतः इनकी पत्नी इनको बहुधा समझाती थी कि इसी प्रकार यदि उधार से कार्य होता रहा तो एक दिन निस्सन्देह यह गृहस्थी चौपट हो जायगी। लेकिन ये भाग्य को दोष देते हुए समझाते थे कि यदि भाग्य में

उधार की रक़म आना नहीं लिखा है तो वह लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं आवेगी। लेकिन ग्राहक भी इनके इस सौजन्य, उदारोचित व्यवहार से रीझकर उधार के रुपयोंको बहुधा चुका देते थे। इसी तरह उनकी गृहस्थी चलती रही।

यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि संसार में सीधा या ईमानदार बन कर रहना कठिन है ? या सादा जीवन बिताना बुरा है? लेकिन विचारणीय यह है कि संसार में ईमानदार मनुष्यों की संख्या प्रायः कम है। और दुर्जन, दुष्ट, बेईमानों की अधिक। यही कारण है कि ईमानदार सज्जन आदमी के निर्दोष कार्य भी उनकी दृष्टि में बेईमानी युक्त ही नजर आते हैं। लोगोंमें यह धारणा है कि जो रिश्वत खाता है, वह दूसरों को भी (रिश्वत न लेने पर) वैसा ही समझता है। कारण स्पष्ट है कि उसका मन साफ नहीं है, इसी से सभी को ऐसा ही समझता है। जैसे कि पीलिया के रोगी को सभी चीजें पीली नहीं होने पर भी पीली ही नजर आती हैं। ऐसे ही लोगों को छब्बू भाई से सीखना होगा कि व्यापार, नम्रता एवं सरलता, ईमानदारी और सज्जनता से अच्छी तरह हो सकता है। उसको लोग धोखा देंगे भी तो पीछे उन्हें अवश्य पछताना पड़ेगा। यही पछतावा करना हो उसकी ईमानदारी का प्रभाव है।

छब्बू भाई की २० वर्ष की उम्र में पहली कन्या ने जन्म लिया, इस प्रकार क्रमशः लगातार तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं, पर एक भी जीवित न रही। इस कारण से ये तथा इनकी पत्नी दोनों उदास रहने लगे। वे शीघ्र ही पुत्र का मुख देखना चाहते थे। जब इनके २५ वर्ष की उम्र तक कोई पुत्र नहीं हुआ तो धर्म की ओर इनकी विचार-धारा विशेष रूप से प्रवाहित होने लगी। इस तरह कार्य करते, धर्म की ओर श्रद्धा रखते हुए ३० वर्ष की आयु में इन्होंने पुत्र रत्न का मुंह देखा। और खुशी मना कर उसका नाम शङ्करलाल रखा। शङ्करलाल नाम रखने में कोई कारण विशेष नहीं था। ज्योतिष के अनुसार नाम रखा गया था। तीन साल बाद इनके एक और पुत्र हुआ, जिसका नाम दाखूलाल रखा। इसके पश्चात् ३५ वर्ष की आयु में बापूलाल नामक पुत्र पैदा हुआ। इस तरह इनकी गोद पुत्रों से भर गई, मन की भावना पूरी हुई। क्योंकि निज के वंश का अभ्युदय देखकर किसको आनन्द नहीं होता है ! सभी

को ही है। यह सब धर्म के प्रभाव से हुआ है, ऐसा मान, धर्म की ओर इनकी रुचि अधिक बढ़ने लगी। यथार्थ में यदि सोचा जावे तो अपने कृत पुण्य-पाप या शुभ-अशुभ कर्मों का फल है। धर्म पालन की ओर तो सभी को लगना ही चाहिये। क्योंकि यही आत्मा की उन्नति का साधन है। और भारतवर्ष तो इसके लिये प्रसिद्ध ही है। यहाँ के वासियों की इस ओर प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है।

इसीसे ये तपस्या करने लगे। और तपस्या हर चातुर्मास में विशेष रूप से करते हैं। इन्होंने एक दिन से लेकर २३ दिन तक की तपस्या की है।

वैराग्य-भाव

प्रत्येक मनुष्य की विचार-धारा प्रतिक्षण में बदलती रहती है। जो विचार इस समय हैं, वे कुछ समय बाद नहीं रहेंगे। लेकिन कुछ विचार ऐसे होते हैं जो कभी हटते ही नहीं, ये ही विचार दृढ़ विचार कहलाते हैं, इन्हीं से कार्य होता हुआ देखा जाता है। संसार में भी दृढ़ विचार वालों की प्रशंसा होती है, और क्षणिक विचार वालों का विश्वास उठ जाता है। यही नियम धार्मिक प्रवाह के लिये भी लागू होता है। उसी के अनुसार छब्बूभाई के विचारों में भी परिवर्तन होना आरम्भ हो गया। उनकी श्रद्धा धर्म के प्रति पहले से ही थी। वह अब और दृढ़ होती जाती थी। अब उनकी दृढ़ता देखियेः—

मन्दसौर में श्री मज्जैनाचार्य शास्त्रज्ञ, पूज्य श्री मन्नालालजी म० सा० की सम्प्रदाय के मुनि श्री छोटेलालजी म० सा० का शेखे काल पधारना हुआ। उन्होंने छब्बूभाई की बढ़ती हुई तपस्या तथा धार्मिक प्रवृत्ति को देख कर आत्म-कल्याण करने का उपदेश रूप व्याख्यान दिया। जिसका आशय यह था कि यह संसार असार है, इसमें उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ एक दिन अवश्य नाश होते हैं। फिर उनके लिए व्यर्थ का पापास्रव क्यों किया जावे। संसार में कुटुम्बीजन भी अपने स्वार्थ के सगे हैं, उनके स्वार्थ में यदि जरासा भी

अन्तर पड़ जाता है तो वे काले नाग की तरह उलट जाते हैं। भली-बुरी, खोटी-खरी सुनाने से भी नहीं चूकते हैं। इसके लिए मैं एक कहानी सुनाता हूँ जिससे ज्ञात हो जायगा कि यथार्थ में ये साथी न हो कर स्वार्थी हैं ? पापका फल तो उस अकेले जीव को ही भुगतना पड़ता है—

रत्नाकर का जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ था, किन्तु उसके आचरण शूद्रों के समान थे। वह हमेशा लुटेरों के साथ रहता और बेचारे निर्दोष यात्रियों की हत्या करके उनका सब माल-मत्ता छीन लेता था। यही उसकी आजीविका थी। एक दिन दैवयोग से एक जैन मुनि उस ओर से आ निकले। रत्नाकर ने उनकी ओर झपट कर कहा— ठहरो, ठहरो, आगे मत बढ़ना।

मुनि—अरे ब्राह्मण ! तू क्या चाहता है ?

रत्नाकर—तुम जानते नहीं, मैं डाकुओं का सरदार रत्नाकर हूँ। तुम्हारे पास जो कुछ हो, सीधे यहाँ रख दो, नहीं तो, तुम्हारी खैर नहीं।

मुनि—भाई ! हमारे पास तो यह केवल यह विद्या और श्री अर्हंतदेव का नाम है। तुम प्रसन्नता से जब चाहो तब उसे ले सकते हो।

रत्नाकर—अच्छा तुम जरा व्याख्यान देकर तो समझाओ। तुम्हारा स्वर तो बड़ा अच्छा मालूम होता है।

तब मुनि ने सुमधुर स्वर में भगवान् के त्रिलोक पावन नामों का स्मरण करना आरंभ किया। उसके प्रभाव से रत्नाकर का कठोर हृदय पसीज गया। उसमें कुछ दया का सञ्चार हुआ। वह बोला—मुने ! मेरे हृदय में सदा आग सी जलती रहती है, आज तुम्हारा भजन सुन कर मुझे कुछ शान्ति हुई है। क्या इसमें कोई जादू भरा है ? तब मुनि ने कहा कि, भाई ! भगवान के भजन में तो अजीब जादू भरा है, यह तो शान्ति का भण्डार है। तुम लूट मार करते हो, निरपराध यात्रियों के प्राण हरते हो। सोचो तो सही, संसार मे जीव हिंसा से बढ़ कर कोई पाप है ? सच मानो तुम्हारे हृदय में पापाग्नि सुलग रही है। अतः भाई ! तुम यह क्रूर कर्म त्याग दो।

रत्नाकर—यदि मैं आपके कहने से लूट मार छोड़ दूं तो फिर माता-पिता और कुटुम्ब का पालन कैसे करूं ? आप ही बताइये।

मुनि—भाई, जिनका तुम पालन-पोषण करते हो उनसे एकबार पूछो तो सही कि वे तुम्हारे लूट के धन के साथी हैं ? या उसके बदले तुम्हे जो नरक में कष्ट भोगना पड़ेगा, उसमें भी भाग लेंगे, या नहीं ? यदि केवल धन के ही साथी हों तो तुम्हारा इस प्रकार पाप में लगे रहना ठीक नहीं।

मुनिराज का यह कथन सुन कर उसने समझा कि यह मुनिराज इसी बहाने मुझे घर भेज कर भाग जाना चाहते हैं। उसके मन के विचार को जान कर साधुजी बोले-देखो, मुझे इस पेड़ से बांध जाओ और जल्दी पूछ कर मुझे उनका विचार बताओ।

रत्नाकर ने अपने घर जाकर माता-पिता से कहा-पिताजी! मैं नित्य लूट मार कर और जीवों की हत्या करके आपके लिये धन लाता हूँ, उसे आप सभी भोगते हैं, परन्तु मुझे इस पाप कर्म के लिये परलोक में जो दण्ड मिलेगा उसमें आप दोनों भाग लेंगे या नहीं ?

बेटा! धनोपार्जन करके हमारा पालन करना तेरा कर्तव्य है। यदि तू अधर्म से धन बटोरता है तो हम उसका क्या कर सकते हैं ! उसका फल तो अकेले तुझे ही भोगना पड़ेगा। जो जैसा करता है उसे वैसा भोगना पड़ता है। हम तेरे पाप के भागी कैसे हो सकते हैं ?

माता-पिता का कोरा उत्तर सुन कर उसे बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। उसे ऐसी आशा कभी नहीं थी। फिर उसने अपनी स्त्री से जाकर पूछा।

स्त्री ने कहा, स्वामिन्! मेरा धर्म तो आपकी सेवा करना है। यदि उसमें त्रुटि करूँगी तो मुझे नरक भोगना पड़ेगा। धन लाना तो आपका काम है। यदि आप पाप पूर्वक धन संग्रह करते हैं तो उसकी जिम्मेदारी आप पर ही है। मैं उसका फल क्यों भोगूंगी ?

अपने परिवार का ऐसा कोरा उत्तर पा कर उसे बड़ा खेद हुआ। उसे स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि मेरे कुटुम्बी केवल धन के साथी हैं, उन्हें मेरे

दुःख भोगने को कोई चिन्ता नहीं है। वह मन ही मन पछताता हुआ मुनि के पास आया और उनका बन्धन खोल कर उनके चरणों में गिर पड़ा। उस समय पश्चात्ताप की आग से उसका सारा मल जल रहा था, वह फूट-फूट कर रोने लगा। उसे अत्यन्त दुखी देख कर मुनि ने ढाढ़स बंधाया। तब उसने रोते हुए मुनि से अपने उद्धार का उपाय पूछा। मुनि ने कहा 'कि भाई! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो आज से किसी भी जीव को मत सताना और जहां तक बन पड़े निरन्तर परमात्मा का जप करना।

उसने भविष्य में पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा कर ली। उसने सदा के लिये घर से सम्बन्ध तोड़ दिया और मुनिराज के कथनानुसार परमात्मा के भजन में इतना लीन हो गया कि उसके शरीर पर बाँबी जम गई, और उसका नाम रत्नाकर से बाल्मीकि हो गया।

यह कहानी कल्पित नहीं, गढ़ी हुई नहीं है, किन्तु एक सत्य घटना है। सत्सङ्ग के प्रभाव से महा हिंसक चोर सुधर गया। उसे अपने कुटुम्बी जनों की असली कार्यवाही ज्ञात हो गई। इसी से उसे उनकी स्वार्थपरता पर पछतावा होने लगा। अन्त में उसने अपनी आत्म-शुद्धि कर ली। और त्यागी जीवन बिता कर बाल्मीकि ऋषि कहलाये। अतः इस कहानी से प्रत्येक मनुष्य को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

मुनि श्री ने फिर कहना शुरू किया कि "यह आत्मा अनादि काल से कर्मों से लिप्त हो रही है, उनसे लिप्त होने के कारण ही संसार का क्रम जारी हो रहा है। इस क्रम को दूर करने का उपाय सम्यक्त्व पूर्वक संयम धारण करना ही है। क्योंकि पाप कर्मों का आस्रव रुक जाने पर संयममय जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्य के करोड़ों भवों के पूर्वोपार्जित कर्म, तप द्वारा नष्ट हो जाते हैं। तपस्या निर्जरा का साधन है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है कि— "तपसा निर्जरा च" अर्थात् तपस्या करने से भी निर्जरा होती है। जैसे ईंधन अग्नि के द्वारा भस्म कर दिया जाता है उसी प्रकार कर्मों को ध्वंस करने के लिए तप अग्नि के समान है। करोड़ों भवों के सञ्चित कर्म तपस्या द्वारा नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि श्रमणोत्तम भगवान् महावीर ने तप का स्वयं

आदर किया, उसकी महिमा प्रकट की है जैसे लेपवाली दीवाल, लेप हटा कर कृश बना दी जाती है, इसी प्रकार अनशन आदि बारह प्रकार के तप द्वारा शरीर को कृश कर देना चाहिये और अहिंसा का पालन करते हुए साधु-जीवन व्यतीत करना चाहिये।" इसी प्रकार उक्त मुनि श्री ने अनेक प्रकार से धर्मोपदेश दिया। जिस वैराग्यमयी उपदेश को सुन कर छब्बालालजी तो निहाल हो गये। वे तो ऐसा चाहते ही थे। उनका तो मन चाहा काम बन गया। इस उपदेश का इन पर इतना गहरा असर पड़ा कि वे शीघ्र ही सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर, तप द्वारा पाप कर्मों के क्षय करने की चाह करने लगे। तदनंतर इन्होंने घर आकर अपनी पत्नी को महाराज श्री के भावपूर्ण वैराग्यमय उपदेश की चर्चा की, और अपने दीक्षा के भाव प्रकट किये। जब इनकी पत्नी ने यह सुना तो सांसारिक मोह के वशीभूत होकर उसने इनके दीक्षा के भावों से विमुख करने के लिये बहुत समझाया। उसने पुत्र प्रेम की ओर भी इनका ध्यान आकर्षित किया। और समझाया कि "यह बच्चे भी नौनिहाल हैं, इनकी देख-रेख कौन करेगा। मैं तो नारी हूँ, मैं किस प्रकार इनकी यथोचित शिक्षा तथा खान पान का प्रबन्ध कर सकूंगी?" इत्यादि वचनों द्वारा अपने प्रेम को जतलाते हुए कहा कि आप भूल कर भी दीक्षा के विचार मन में न लाइये।

तत्पश्चात् उन्होंने महाराज सा० से भी विनती की कि वे मेरे पति को संसार छोड़ने का भावपूर्ण उपदेश न देवें। क्योंकि मेरे घर में मेरा तथा बच्चों का भरण-पोषण करने वाला दूसरा कोई नहीं है यदि इन्होंने दीक्षा ले ली तो फिर हम सब पर अपार विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा। यह सुन, म० सा० ने फरमाया कि मेरा काम तो उपदेश देने का ही है, चाहे उसे कोई किसी रूप में ग्रहण करे, मैंने तो तुम्हारे पति से दीक्षा लेने का आग्रह नहीं किया। इसलिये मुझसे कहना उचित नहीं है। यही नहीं, उन्होंने अपने पतिदेव को कुछ दिन तक महाराज सा० की सेवा में व्याख्यान श्रवण करने के लिये स्थानक में भी न जाने दिया।

लेकिन जब वैराग्य का अंकुर शुभ मुहूर्त में बो दिया गया तो फिर भला

वह बिना पनपे कैसे रह सकता था। दीक्षा रूपी वृक्ष तो खड़ा होना ही था। धीरे-धीरे इनका मन कारोबार एवं गृहस्थी के कार्यों से ऊबने लगा। वे गृहस्थी के जीवन से छुटकारा पाने के लिये इस प्रकार छटपटाने लगे कि जिस प्रकार जाल में फँसा मृग छुटकारा पाने को तड़फता है।

भीष्म-परीक्षा

संवत् १९७५ में "लालबुखार" फैला। वह इतना फैला कि भारत का गाँव-गाँव, शहर-शहर और झौंपड़ी-झौंपड़ी भी नहीं बची। निराधार भारतियों को दवा देने वाला, उनकी सेवा करने वाला कोई भी नहीं था। वे बिचारे बिना मौत छटपटा कर प्राण खो रहे थे। उनकी सुध लेने वाला एकमात्र परमात्मा ही था, उसीका स्मरण करना मात्र ही केवल उनका सहारा था। कारण कि वही सर्वाधार है। इस बुखार का प्रकोप राजपूताने तथा मालवे में भी हुआ। लाखों की संख्या मे स्त्री-पुरुषों एवं नन्हें नन्हें बच्चों ने अपने प्राण, बुखार को अर्पण कर दिये। तब कहीं जाकर वह शान्त हुआ। इस बुखार ने पति को पत्नी से, माता को पुत्र से, पुत्र को माँ-बाप से, भाई को बहिन से, आपस में अपने प्रियजनों से अलग कर दिये। हजारों बच्चों को अनाथ बना दिये, हजारों स्त्रियों के सुहाग सिन्दूर सदा के लिये छीन लिये।

हमारे छब्बूभाई पर भी वज्रपात हुआ, इसी बुखार से उनके १३वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र शङ्करलाल तथा पत्नी का स्वर्गवास होगया। यही नहीं, इनका मझला लड़का दाखूलाल भी अपनी माता की मृत्यु के आठ दिन पश्चात् ही दैवात् छत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त हो गया। यह मानी हुई बात है कि ऐसे कुअवसर परीक्षा के लिये ही उपस्थित होते हैं। उस समय मनुष्य के धैर्य, ज्ञान, विचार और कुटुम्बीजनों की भी परीक्षा हो जाती है कि वे कहाँ तक मनुष्यों की सेवा करते हैं, सो भी सच्चे दिल से, या देखादेखी या दिखावे मात्र को। परन्तु विपत्ति में जो सहायक नहीं होता हैं वह स्वार्थी है, लोभी है, नीच

है। आज यहाँ ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो पैसे के गुलाम होकर मित्रता में, अपनी रिश्तेदारी में, और घनिष्टता में अन्तर कर देते हैं क्या यह उनकी बुद्धिमानी है? या सहृदयता का परिचय है? कुछ भी कहो, वे तो अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करते ही रहते हैं। उनके मन पर इसका कोई प्रभाव पड़ता ही नहीं, मानो उनके लिए कोई घटना घटित ही नहीं हुई। वे परीक्षा का अवसर प्राप्त होते ही नौ–दो ग्यारह होकर पुनः बहानेबाजी से सफाई पेश करते हुए सामने आते हैं।

किन्तु छब्बालालजी ने अपनी प्रिय पत्नी एवं प्राणप्यारे दो पुत्रों की मृत्यु की विषम परिस्थिति में भी धर्म और धैर्य का साथ नहीं छोड़ा। पुत्र शोक की कितनी दारुण वेदना है, उसका अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है। यह सभी जानते हैं कि राजा दशरथ ने पुत्र वियोग में अपने प्राण खोये थे। फिर भी छब्बूभाई ने संसार को नाशवान् समझ कर एवं इन प्राणियों का संयोग हमारे साथ इतना ही था यह जान, अपने हृदय के दारुण दुख को शान्त किया। और दृढ़ निश्चय किया कि शीघ्रातिशीघ्र दीक्षा ग्रहण कर अपनी आत्मा का उद्धार करना चाहिये। क्योंकि इस नश्वर शरीर का क्या भरोसा कि कब नाश हो जाय, नश्वर चीज से मोह करना ही बुरा है, यदि मोह कर भी लिया तो कर्त्तव्य हो जाता है इस मोह को त्याग भी जल्दी दें। इसी में दूध का दूध और पानी का पानी है।

अब ये छब्बालालजी साधु का सा जीवन व्यतीत करने लगे। इन्होंने रात्रि–भोजन तथा रात्रि में जल न पीने के त्याग कर दिये यानि चौविहार करने लगे। पीने के लिए जो कच्चा जल पहिले काम में आता था, उसका त्याग कर धोवन–पानी काम में लाने लगे। इनकी दिनचर्या में परिवर्तन हो गया। पहिले जहाँ बहुत सा समय घरेलू कामों में व्यतीत होता था, अब वहाँ सामायिक करना, प्रतिक्रमण सीखना और धार्मिक-अध्ययन करना ही मुख्य दिनचर्या हो गई। कुछ दिनों के बाद इन्होंने जूते पहिनने का भी त्याग कर दिया। यानि ये बिलकुल एक जैन साधु सा जीवन व्यतीत करने लगे। इन पर दिन प्रतिदिन वैराग्य का रंग चढ़ता जाता था

इनके साधु बनने में केवल एक हलकी सी समस्या इनके एकमात्र छोटे पुत्र बापूलाल की थी जो कि अभी अबोध बालक ही था। किन्तु संयोग वश वह भी हल हो गई। इन्हीं के रिश्ते में श्रीयुत रतनलालजी सेठ की धर्मपत्नी निसन्तान थी, उनको एक लड़का गोद लेने की बड़ी प्रबल इच्छा थी। अतः अनायास अपनी इच्छा को पूरी होते देख इनके छोटे पुत्र बापूलाल को गोद ले लिया जिससे छब्बालालजी को दीक्षा लेने में किसी प्रकार की बाधा न रही। पर पीछे से सुना गया है कि संवत् ८१ में यही बापूलाल अपनी जाति में जेवर वगैरह पहिन कर गया। वापिस आते हुए वह जेवरों सहित गायब हो गया, खोजने पर भी उसका पता नहीं लगा। सभी हैरान हो कर रह गये। इसमें जेवर ही उसके प्राणघातक बने। उसीसे किसीने उस अबोध बालक के प्राण लिये।

जब मुनि अवस्था में इस दुखद घटना की सूचना मिली तो ये दुखित न होकर संसार के स्वरूप का विचार करने लगे कि—

राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥

निश्चिन्त रह कर अर्हत भक्ति में अधिक मन लगाने लगे।

दीक्षा

अब वे सर्व प्रकार से बन्धन विहीन होगये। तब ये श्रीमज्जैनाचार्य, गम्भीर, शान्त-दान्त पूज्य श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज सा० की सेवा में रहने लगे उनके साथ साथ गृहस्थ वेश में ये विरागी बन कर विहार करने लगे, और ज्ञानोपार्जन में अधिक ध्यान देने लगे। जब पूज्य श्री ने देखा कि इनका वैराग्य पूर्ण रूप से परिपक्व अवस्था में अचल, अमिट और संयत है, और इन्हें दीक्षा देना भी न्यायसंगत है तो इसी भाव को रखते हुए पूज्य श्री चौमासे के लिये विहार करते हुए मन्दसौर पधारे। वहां पर छब्बा-

लालजी ने अपने छोटे भाई शिवलालजी से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी तो उन्होंने इनका अत्याग्रह देख आज्ञा दे दी। क्योंकि वे पहिले से इनके वैराग्य मयी भावों को जानते थे। आज्ञा प्राप्त होने पर अगहन वदि १० सं० १९७८ बृहस्पतिवार के शुभ मुहूर्त में तीसरे पहर के लगभग हीराबाग में वट वृक्ष के नीचे छब्बालालजी को दीक्षा ग्रहण करवाई। दीक्षा का समारोह बड़ा विराट था, टिड्डी दल की तरह हजारों नर नारी दीक्षा-महोत्सव देखने के लिए इकट्ठे हुए। उपस्थित जन समुदाय को प्रभावना बाँटी गई। कई श्रावक-श्राविकाओं ने इस पवित्र अवसर पर अनेक प्रकार के सौगन्ध किये तथा जीवदया आदि नानाप्रकार के धार्मिक कार्य किये गये। इस प्रकार हमारे छब्बालालजी अब महाराज छब्बालालजी कहलाने लगे। आज उस ज्योतिषी की बात सच्ची सिद्ध हुई।

दीक्षा महोत्सव का सारा व्यय इनके छोटे भाई शिवलालजी ने ही किया। ये बड़े दानी, गम्भीर एवम् धर्मप्रिय सज्जन हैं। इनके धर्म-प्रेम की भावना की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इनका नाम मन्दसौर वगैरह में प्रसिद्ध है।

आपके धार्मिक भाव इतने उन्नत और विशाल हैं कि जहाँ-जहाँ पर तपस्वीराज ने तपस्या की वहाँ पर दर्शनार्थ चातुर्मास में अवश्य पधारे और तत्र विराजित सन्तों के दर्शन कर सेवा का लाभ लेकर अपनी शक्तिप्रमाण तप-महोत्सव में दान दिया व वहाँ की संस्थाओं का निरीक्षण कर ज्ञान-दान में सहायता दी। सब संस्कार इन दोनों भाइयों में वंश परम्परा से आये हैं अर्थात् प्राकृतिक हैं, बनावटी नहीं हैं। यह बात पूर्व के प्रकरण से स्पष्ट प्रकट है।

मुनि श्री छब्बालालजी म० सा० ने भी अपने पिता के नाम को रोशन तो किया ही है पर साथ में अपने अपूर्व त्याग एवं तप द्वारा अपने गुरु श्री के नाम को भी दिपाया है।

द्वितीय-प्रकरण

—○✻○—

साधु-जीवन

नुष्य जीवन के दो विभाग हैं, एक गृहस्थ दूसरा साधु-अनगार। दोनों के जीवन में परस्पर सम्बन्ध होते हुए भी अन्तर है। यदि एक को साध्य और दूसरे को साधन कहा जावे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। अर्थात् गृहस्थों के सहयोग से ही मुनि-अवस्था का पालन हो सकता है। पर अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करना दोनों को अनिवार्य है। गृहस्था-वस्था में हर प्रकार की सुविधा व मर्यादायुक्त जीवन बिताने की आज्ञा है। लेकिन इस अवस्था का अतिक्रमण करने के बाद मनुष्य का जीवन ही बदल जाता है, उसे पग-पग पर अपने नियमों के पालन की ओर पूरा ध्यान देना होता है, उसकी चर्या तलवार की धार पर चलने के समान है। यदि असा-वधान रहता है तो अपनी आत्मा का पतन करता है, और सावधान होकर नियमों को पालता है तो स्वर्ग और मोक्ष के अखण्ड राज्य का स्वामी बन सकता है। इसलिए नये बने छब्बालालजी म० सा० भी अपने नियमों का पालन कठोरता से करने लगे। इन्होंने साधु जीवन के नियमों का अभ्यास वैरागी अवस्था में कर लिया था, इसलिये कोई कठिनाई न उठानी पड़ी, न प्रमाद पूर्वक दोष लगने का ही कोई मौका आया।

छब्बालालजी म० सा० में सबसे बड़ा गुण यह है कि इनको क्रोध नहीं आता है, ये प्रत्येक बात को सहन कर लेते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है कि उनसे किसीने कुछ कहा ही नहीं। यह शान्ति और सहनशीलता का गुण आत्मा के उत्कर्ष का प्रधान कारण है। यह गुण इनके जीवन में हमेशा साथ रहा

है, व विद्यमान रहेगा। ये साधु जीवन में भी अपने साथी सन्तों की बड़ी लगन के साथ वैयावच्च करते रहते हैं। उनकी हर तरह से प्रेमपूर्वक सेवा करते हैं। गुरुमहाराज की विनय करते हैं और बिना हिचकिचाहट के उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। सार यह है कि यह विनयी, सहनशील, दृढ परिश्रमी, सेवाव्रती, अपने आचार के कट्टर पालक, भोले, हँसमुख और स्वाध्याय-प्रेमी हैं। इनकी रात्रि का अधिकांश भाग पञ्चपरमेष्ठी के भजन में ही बीतता है। कभी-कभी ये रात को १२ बजे उठ कर भजन करते देखे जाते हैं, कभी दो बजे, कभी एक बजे अर्थात् रात में सजग रह कर अपनी आत्मा को शान्त रख एकाग्र मन से स्तवन आदि गुनगुनाया करते है। यही कारण है कि इतनी बड़ी उम्र होने पर भी उक्त कार्यों में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं करते हैं, प्रसन्न चित्त से सभी कार्य करते हैं। धन्य है ऐसे आदर्श मुनिराजों को। इन्हीं का मनुष्य जन्म पाना सफल है।

साधु जीवन में आने के पहिले से इनकी प्रवृत्ति तपस्या की ओर अधिक रह चुकी थी, उसका अनुसरण इस जीवन में और अधिक मात्रा में किया। ऐसा कोई भी चातुर्मास खाली नहीं गया होगा जिसमें इनने तपस्या की ओर प्रवृत्ति न की हो, हर चातुर्मास में तपस्या और स्वाध्याय करते रहते हैं। इसीलिये इनके धार्मिक ज्ञान की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी चढ़ी है। इन्हीं सभी कारणों पर विचार करके इनको तपस्वी की उपाधि दी गई। यह पदवी इनकी सार्थक है, केवल दिखावा मात्र नहीं। यह उपाधि भीष्म प्रतिज्ञा के समान है।

इनकी दिनचर्या सीधी-सादी कंठस्थ है। आपको उसे पालन करने में कृत्रिम घड़ी की कभी आवश्यकता न रही, न रहेगी। यह बात भी नहीं समझना चाहिए कि इनका कोई कार्य रह जाता होगा, या आगे पीछे होता होगा, सो भी नहीं है। सभी कार्य व्यवस्थित, समिति पूर्वक, यत्ना के साथ करते हैं। कभी भी गुरुदेव या साथी मुनियों को कोई बात कहने का अवसर भी प्राप्त नहीं होने देते हैं। उनका स्वभाव बड़ा सीधा-सादा, भोला-भाला हैं। ऐसे तपस्वी संत का समागम बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। ये प्रतिदिन गोचरी लाने में बड़ी यत्ना से काम करते हैं। अपने नियमों का पालन तो बड़ी कठो-

रता से करते हैं। जिसे देख कर अन्य साधु दंग रह जाते हैं। ऐसे सेवा के भाव यदि सभी में होवें तो बड़ा आनन्द रहे।

चातुर्मास-विवरण

जैन साधु वर्षा के चारों मास में एक जगह पर रह कर ही भव्य जीवों को उपदेशामृत का पान कराते हैं। शेष ८ माह जल-प्रवाह के समान निरंतर विहार करते रहते हैं। जैसे जल यदि एक जगह पर इकट्ठा हो जावे, बहे नहीं तो उसमें विकार पैदा हो जाता है, वह रोग पैदा करता है। उसी प्रकार प्रत्येक साधु को बिना कारण-विशेष के अधिक समय तक एक जगह रहने की भगवान की आज्ञा नहीं है। यह आज्ञा क्यों दी गई? इसका कारण स्पष्ट है कि यदि कोई साधु एक जगह पर ही ठहर जावे, विहार न करे तो उस स्थान से, वहाँ की जनता से, वहाँ की सामग्री से मोह पैदा हो सकता है। उनके नियमों में शिथिलता आ सकती है। दूसरा कारण यह है कि यदि साधु एक जगह ही बिना कारण-विशेष स्थायी रूप से ठहर जावे तो वहाँ पर ही व्याख्यानादि धर्म प्रचार होगा, अन्य जगह के श्रावक धर्म-ध्यान से वञ्चित रह जावेंगे। यही कारण है कि जिससे विहार करने की आवश्यकता है।

तपस्वीजी महाराज ने हर चातुर्मास में तपस्या की झड़ी लगा दी, उस समय जो उपकारादि हुए उनका पूरा विवरण यहाँ दे रहे हैं। यहाँ एक सूची भी दी गई है जिससे सारा हाल ज्ञात हो जायगा। यही प्रकरण ऐसा है जो तपस्वीजी की यथार्थता को बतलायगा और तपस्वी नाम सार्थक करेगा।

अब चातुर्मास का वर्णन मय तपस्या एवं उपकारादि के होने से पठनीय है। उसे विस्तार के साथ लिखा जाता है:—

सं० १९७९ में प्रथम चातुर्मास मन्दसौर में मुनि श्री नन्दलालजी म० सा० की सेवा में किया। यहाँ पर तपस्वीजी ने १५ दिन के उपवास किये। धार्मिक प्रभावना जीवदया के रूप में की गई।

१९८० का चातुर्मास रतलाम नगर में श्रीमज्जैनाचार्य १००८ श्री पूज्य श्री मन्नालालजी म० सा० की सेवा में किया। एक मास की तपस्या छब्बालालजी म० सा० ने की तथा बड़े प्रवर्तक घोर तपस्वी सच्चे मोती, मोतीलालजी म० सा ने भी मासखमण की तपस्या की थी। पूर के दिन व्याख्यान में जनता खूब थी, बड़े २ राज-कर्मचारी भी आये थे। पारणा के दिन भादवा विद ८ को गोचरी के लिए पूज्य श्री, मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० एवं स्वयं तपस्वी द्वय पधारे थे। यहाँ पर ठाणा ६ सेवा में थे।

सं० १९८१ में रामपुरा में मुनि श्री नन्दलालजी म० सा० की सेवा में चातुर्मास कर ३५ दिन की तपस्या की। गुरु महाराज स्वयं गोचरी को पधारे, साथ में तपस्वीराज भी गये थे। इसी अवसर पर अनेकों मूक प्राणियों को अभयदान मिला और त्याग-प्रत्याख्यान भी खूब हुए।

१९८२ का चातुर्मास उज्जैन में मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० की सेवा में किया। आप बाल ब्रह्मचारी एवं शान्त स्वभावी, मनोहर व्याख्यानी हैं। यहाँ ४१ दिन की तपस्या तपस्वीराज ने की। पूर के दिन जिला हाकिम आदि बड़े राजकर्मचारी अपनी मण्डली सहित व्याख्यान में आये। बाहर से हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष आये। पारणा के दिन उक्त मुनि श्री एवम् स्वयं तपस्वीजी महाराज गोचरी को पधारे थे। अभ्यागतों एवं कैदियों को मिष्टान्न भोजन कराया गया इस प्रकार से जनता में धर्म की खूब जाग्रति हुई।

सं० १९८३ में जावरा में मुनि श्री नन्दलालजी म० सा० की सेवा में चातुर्मास किया। ४८ दिन की तपस्या के पारणा के दिन स्वयं गुरु महाराज एवं तपस्वीजी गोचरी को पधारे। त्याग-प्रत्याख्यान और जीवदया के कार्य बहुत हुए।

सं० १९८४ में मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० की सेवा में रह कर जयपुर में ५१ दिन की तपस्या की। पूर के दिन बाहर से बहुत से नर-नारी दर्शनार्थ आये थे। पारणा के दिन उक्त मुनि द्वय और तपस्वीराज गोचरी को पधारे। उसी दिन १६००० पंचेन्द्रिय जीवों की छूट की गई। इस तपस्या

की खुशी में सरकार की ओर से अगता पलवाया गया था। यह राज्य की धार्मिक भावना का फल है। अभ्यागतों को जिमाया गया। इसी प्रकार बहुत से त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

१९८५ में उज्जैन में मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० की सेवा में रहकर ३१ दिन की तपस्या की। पूर मिती भादवा सुदी ८ को था। पूर के दिन व्याख्यान में हजारों की संख्या में नर-नारी उपस्थित थे। व्याख्यान में सर सूबा साहब, छोटे बड़े जज, चेअरमेन, पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट साहब आदि सभी राज्य कर्मचारी उपस्थित थे। त्याग वगैरह की झड़ी लग गई थी। जीवदया के कार्य बहुत हुए।

सं० १९८६ की साल में चौमासा उस समय के मुनि व वर्तमान में आचार्य पद विभूषित पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० की सेवा में रतलाम में किया। ५१ दिन की तपस्या की गई। पूर के दिन लगभग आठ हजार की संख्या में जनता उपस्थित थी। इसी दिन व्याख्यान में नामली के ठाकुर सा० एवं राज्य के बड़े २ पदाधिकारी गण पधारे थे। बम्बई के एक भाई ने जीवदया पर प्रभावोत्पादक भाषण दिया। जिससे एवं महाराज श्री के जीव-दया के महत्वपूर्ण उपदेश से बहुत उपकार हुआ। श्रीमती राजमातेश्वरी ने भी ५१) रु० के जीवों को अभयदान दिलाया। गोचरी के लिए उक्त मुनि श्री, सुखलालजी म० सा० एवं तपस्वीजी महाराज महलों में पधारे। वहाँ महारानी साहिबा की दासियाँ चांदी के थालों में सूझता आहार एवम् दूध और कस्तूरी बहराने लगीं। तब दूध और कस्तूरी ग्रहण की। उस दिन सारे शहर में राज्य की ओर से अगता पलवाया गया। उसी समय महारानी सा० ने धार्मिक विषयों पर चर्चा की। और महलों के नीचे अभ्यागतों को जिमाया।

१९८७ में बड़ीसादड़ी (मेवाड़) में मुनि श्री किस्तूरचन्दजी म० सा० के साथ चौमासा कर ३३ दिन की तपस्या की। पूर के दिन व्याख्यान का ठाट अनोखा था। पारणा के दिन वहाँ के राजराणा सा० श्री दुलहसिंहजी साहब ने अपने कामदार को भेज कर गोचरी के लिये महलों में पधारने को अर्ज म० साहब से कराई। तदनुसार अवसर आने पर उक्त मुनिश्री और तपस्वीजी

महाराज साहब गोचरी को महलों में पधारे। उक्त राजराणासाहब सामने लेने को आये। हाथ जोड़ कर अर्ज की कि महाराज साहब! गोचरी को पधारिये, उन्होंने अपने हाथों से स्वयं बड़ी विनय के साथ दूध और कस्तूरी बहराई। राजराणा साहब को जीवदया का उपदेश दिया, जिसके फल स्वरूप २७बकरों को अभयदान दिलवाया और दुर्गाष्टमी के दिन बकरे की बलि चढ़ाई जाती थी वह हमेशा के लिये बन्द की गई। राजराणा सा० की आज्ञा से सारे गाँव में अगता रखवाया गया।

सं० १९८८ में रतलाम शहर में मुनि श्री नन्दलालजी म० सा० के साथ चोमासा किया। बेले, तेले, पंचोले आदि को छुटकर तपस्या की।

सं० १९८९ में मन्दसौर में पूज्य श्री १००८ श्री मन्नालालजी म०सा० की सेवा में चातुर्मास किया। ४७ दिन की तपस्या के पूर के दिन बजाजखाने में क़रीब चौदह हजार जनता की उपस्थिति में व्याख्यान हुआ। बाहर गाँव से क़रीब आठ हजार की संख्या में नर-नारी दर्शनार्थ आये थे। जीवदया के लिए पानड़ी की गई थी। पारणे के दिन अभ्यागतों को कपड़ा व भोजन दिया गया, कुत्तों को दुग्धपान कराया। सारे शहर में अगता पलवाया, बोहरों एवं मुसलमानों ने भी अपनी दुकानें बन्द रखी थीं। इस चातुर्मास का व्यय किशनलालजी मुरड़िया, हुकमीचन्दजी, शिवलालजी, मन्नालालजी, कचरमलजी नाहर आदि ने उठाया। रतलाम से नन्दलालजी श्रीमाल स्पेशल ट्रेन लेकर दर्शनार्थ आये थे।

१९९० में दिल्ली शहर में मुनि श्री शेषमलजी म० साहब की सेवा में ५० दिन की तपस्या की। पूर के दिन व्याख्यान में स्वधर्मी बन्धुओं के सिवाय तेरापन्थी एवं मन्दिरमार्गी भाई भी आये थे। मन्दिरमार्गी साधु ने व्याख्यान मे जीवदया विषय पर सारगर्भित भाषण दिया। पारणा के दिन गोचरी को उक्त महाराज साहब एवं तपस्वीजी सहित पधारे थे। अभ्यागतों को दूध अन्न व कपड़ा वितरण किया गया। गृहस्थों ने जीवदया के लिए निम्न सहायता दी, जिसका उपयोग वहाँ के भाइयों ने जीवदया के कार्यों में किया। १७००) परचुनी, १०००) श्री रतनलालजी सा० पारख, ५००) पिता श्री चन्द्रपतिजी

इस प्रकार ३२००) का जीवों की रक्षार्थ चन्दा समाज ने किया। इस रकम से मुनि श्री का कोई सम्बन्ध नहीं है। तपस्या की वजह से उपकारार्थ यह कार्य किया गया।

१९६१ में रतलाम में मुनि श्री नन्दलालजी म० सा० की सेवा में ४६ दिन की तपस्या की। उसके पूर के दिन बाहर से बड़ी भारी संख्या में नर और नारी दर्शनार्थ आये। श्रीमान् महाराज कुमार साहब ने जीतमल बोतरा से गोचरी पधारने के लिये अर्ज कराई। उसे अवसर प्राप्त होने पर मान देकर पारणे के दिन युवाचार्य श्री छगनलालजी म० सा०, मुनि श्री केसरीचन्दजी म० सा० एवं तपस्वीराज स्वयं गोचरी करने को महलों में पधारे। महाराज कुमार सा० ने दूध और कस्तूरी बहराई और जीवदया के लिये ७६) रु० श्रीसङ्घ को दिये। इस प्रकार प्रभावना कर जैन धर्म का प्रचार किया।

सं० १९६२ में ब्यावर में १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० की सेवा में ४६ दिन की तपस्या का जोर लगाया। पूर के दिन व्याख्यान श्रवण करने को बाहर से स्त्री-पुरुष खूब आये। व्याख्यान में पूज्यश्री ने दया तथा जीवरक्षा पर पूरा जोर दिया। पारणे के दिन अभ्यागतों का सत्कार मिष्टान्न से किया गया।

१९६३ में जयपुर में पूज्य श्री खूबचन्दजी म० सा० की सेवा में रहकर २७ दिन की तपस्या की। पारणा के दिन धर्म प्रभावना की गई।

१९६४ में देहली में उक्त पूज्य श्री की सेवा में ४५ दिन की तपस्या का थोक किया। पारणा के दिन अभ्यागतों को अन्न-दान किया गया।

१९६५ व १९६६ में उक्त पूज्य श्री की सेवा में क्रमशः ३४ और २४ दिनकी तपस्या की। पारणा के दिन गरीबों को भोजन कराया गया।

१९६७ के साल गुड़गाँव की छावनी में मुनि श्री सुखलालजी म० सा० की सेवा में रह कर ४४ दिन की तपस्या की। पूर के दिन देहली से एवं अन्य देहात से बहुत बड़ी संख्या में श्रावक व्याख्यान सुनने को आये थे। व्याख्यान में तपस्वीराज भी बैठे थे। सात गाँव के श्रावकों द्वारा अभ्यागतों को मिष्टान्न और कपड़े आदि वितरण किये गये।

सं० १९९८ में जालोर में मुनि श्री मनोहरलालजी म० सा० ने ठाणा २ से चातुर्मास किया। तपस्वीराज ने २२ दिन की तपस्या की। वहाँ के श्रीसङ्घ ने धर्म की प्रभावना की।

सं० १९९९ में भीम (मेवाड़) में मुनि श्री सुखलालजी म० सा० की सेवा में चौमासा कर ४३ दिन की तपस्या की। उक्त मुनिश्री अच्छे विद्वान् तार्किक, मनोहर व्याख्यानी, चर्चावादी, शास्त्रार्थी, धर्म पर होने वाले आक्षेपों का सचोट उत्तर देने वाले हैं, आप कवि भी हैं, आपकी रची कविताएँ तृतीय प्रकरण में दी गई हैं। तपस्या के पूर के दिन व्याख्यान में करीब तीन हजार की संख्या में जनता उपस्थित थी। बाहर से भी बहुत से भाई दर्शनार्थ आये थे। पूर दिन जिनमार्ग का प्रभाव प्रकट करने के लिए गृहस्थ-जन जुलूस सहित दर्शन करने उपाश्रय में आये थे। उस समय धार्मिक विषयों पर व्याख्यान हुए। इसलिए उस देहात में मुनि श्री के चातुर्मास करने से धर्म की खूब प्रभावना हुई।

२००० की साल बगड़ी में मुनि श्री सुखलालजी म० सा० की सेवा में तपस्वीराज ने ४२ दिन की तपस्या की। पूर के दिन बाहर से एक हजार के क़रीब जनता दर्शनार्थ आई थी। आगरा निवासी बाबू पद्मसिंहजी ने जीवदया के लिए भाषण दिया। उसके फल-स्वरूप ५००) रु० पीपलिया वाले सेठ प्रेमराजजी बोहरा ने जीवदया में निकाले एवं बगड़ी श्रीसङ्घ ने १६००) रु० जीवदया के कार्य में खर्च किये। पारणा के दिन बहुत उपकार किया गया। उक्त तपस्वीराज ने गृहस्थवस्था में १ से लगा कर २३का थोक किया था, २२ का नहीं।

सं० २००१ में ब्यावर में पूज्यश्री १००८ श्री खूबचन्दजी म० सा० की सेवा में तपस्वीजी ने २८ दिन की तपस्या की।

सं० २००२ में उदयपुर राजधानी में पं० रत्न मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म० सा० की सेवा में चातुर्मास कर ३६ दिनों की तपस्या की। भादवा सुदि६ को पारणा के दिन हिज हाईनेस महाराणा साहब श्री भूपालसिंहजी सा० बहादुर के० सी० आई० ई० की आग्रह भरी बिनती होने से महलों में चारों मुनिराज

गोचरी को पधारे। कुछ उपदेश श्रवण करके महाराणा सा० ने खड़े हो कर अपने हाथों से दूध और कस्तूरी बड़ी प्रसन्नता से बहराई। जीवदया के लिए पर्याप्त आश्वासन दिया। इसी तपस्या के उपलक्ष में गरीबों को भोजन जिमाया गया, कई संस्थाओं को सहायता भेजी गई और १२५ बकरों को अभयदान दिया गया।

प्रिय पाठकों! आपने चातुर्मासों में तपस्वीराज की तपस्या का तथा उसके उपलक्ष में किये गये धर्म-प्रभावना के कार्यों की विस्तृत व्याख्या अवलोकन कर ली है। इससे स्पष्ट रूप से विदित हो चुका है कि तपस्वीराज ने दीक्षा लेने के बाद से ही तपस्या शुरू कर दी और अभी तक तपस्या बराबर करते चले आ रहे हैं। ये तपस्या प्रायः गर्म जल के ही आधार से ही करते हैं। उसमें भी यह विशेषता है कि तपस्या करते समय भी दिन-रात स्वाध्याय एवं आत्म-ध्यान में ही संलग्न रहते हैं। पिछली रात में उठ कर भजन किया करते हैं। इस समय आपकी उम्र लगभग ७० वर्ष की है, तो भी अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित रूप से करने के अतिरिक्त अन्य मुनियों की वैयावच्च बड़े प्रेम एवं उत्साह और लगन के साथ करते हैं। जिससे इनके जीवन की विशेषता स्पष्ट रूप से झलकती है। इनके शरीर को अवलोकन करने से यह प्रतीत नहीं होता है कि "ये महापुरुष प्रतिवर्ष उग्र तपस्या करते हैं" इनके सिवाय उपवास, बेला, तेला, पंचोला आदि खूब किये हैं, उनकी गिनती नहीं है। इस प्रकार की तपस्या बराबर प्रतिमास करते ही रहते हैं।

तपस्या के दिनों का योग देने से ज्ञात हुआ कि इनने ८७५ दिन की तपस्या सं० १९७९ से सं० २००२ तक की, उसके २ वर्ष.५ माह ५ दिन होते हैं। क्या अन्य साधारण पुरुष इस प्रकार की तपस्या की कल्पना कर सकते हैं? यदि किसी से यह चर्चा की जावे तो उसे हँसी ही मानेंगे। परंतु यह बिल्कुल सत्य घटना है। ऊपर के आंकड़ों को देखने से इनके 'तपस्वीराज' की उपाधि देने में जरा भी अतिशयोक्ति दृष्टिगोचर नहीं होगी। इनकी यह उपाधि सार्थक ही प्रतीत होती है।

मेरी स्पष्ट राय है कि इनका यह शरीर इस तपस्या के बल पर ही टिक

रहा है। तपस्या के द्वारा अशुभ कर्मों की निर्जरा होकर शुभास्रव होता रहता है। ये शुभ परमाणु, शुभ कार्यों की पूर्णता के प्रकाशक, आयुवर्द्धक और शरीर को आरोग्यता प्रदान करने वाले हैं। तपस्या के द्वारा रोग के परमाणु नष्ट होकर सदा के लिए निरोगता प्राप्त होती है। जिन लोगों का मत है कि तपस्या करने से निर्बलता, शारीरिक कमजोरी आदि होती है, वे भूल करते हैं। यदि तपस्या से यह बात होती तो तपस्वी जन कृश काय, रोगी नजर आते, पर वे इसके विपरीत अधिक आत्म-ध्यानी, निरोग, अधिक आयुष्य वाले दृष्टि-गोचर होते हैं। इसीलिए उनका कथन मिथ्या प्रतीत होता है।

तप-महत्व
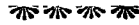
तप आत्मा की शुद्धि का उपाय है, जैसे मिट्टी पत्थर आदि से मिश्रित सोना अग्नि में पिघलाने से मैल को त्याग कर शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, वैसे ही कर्मवेष्टित कर्मावरण युक्त आत्मा तप रूपी अग्नि की कड़ी से कड़ी आंच में ज्ञानावरणादि कर्म परमाणुओं को जला कर शुद्ध होकर अपने असली स्वरूप को प्राप्त हो जाती है। आत्मा का असली स्वरूप तो केवलज्ञान और केवलदर्शन मय याने उपयोग सम्पन्न है। इस स्वरूप को प्राप्त कराने में बाधक कारण कर्म है। इन्हीं कर्मों के कारण से आत्मा निज परिणति को विस्मरण कर परपरिणति में लुभा रही है। उस परपरिणति से, कर्मों से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय तप है।

तप का आचरण करने से आत्मा में शान्ति प्राप्त होती है, यही शांति आगे बढ़ती जाने पर निराकुलता मय अव्याबाध सुख का रूप धारण करता है। इसी शान्ति के प्राप्त होने पर क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषायों जो आत्मा की शत्रु है, नष्ट होकर वीतरागता प्राप्त होती है।

जिससे कर्मों का क्षय हो, चाहे वह एकदेशीय हो या सर्वदेशीय, तप कह-लाता है। इसी को संवर और निर्जरा के रूप से कहते है। जिन कारणों से आत्मा में कर्मों का आना होता है वह आस्रव है, इसी आस्रव से आत्मा प्रति-

क्षण नवीन कर्मों को ग्रहण करती जाती है। इसी आस्रव को रोक देना अ
कर्मों के आने के द्वार-कारणों को बन्द करना संवर, उन रुके हुए कर्मों
कुछ भाग नष्ट कर देना निर्जरा और सर्वदेश कर्मों को क्षय करना मोक्ष है
इससे यह बात ध्यान में आगई होगी कि आस्रव तो संसार का कारण है
संवर तथा निर्जरा मोक्ष के कारण हैं। इनका तप से पूरा सम्बन्ध है
द्वारा आस्रव रुक कर संवर और निर्जरा होती है।

तप के बारह भेद हैं। इन बारह में से कुछ तप तो इतने आसान
मनुष्य उनका पालन सरलता से करता ही है, पर उस ओर उनका वि
रहने से फल के भागी नहीं होते हैं, अतः उपयोग रखना ही श्रेष्ठ है।
तो कष्टसाध्य है पर उनसे कर्मों की निर्जरा अधिक होती है। इसीलिए
आचरण करने की बड़ी आवश्यकता है।

अब प्रश्न होता है कि तपस्या करने का हमें क्यों आवश्यकता है? इस
का उत्तर यह है कि जैसे भूख लगने पर भोजन की आवश्यकता है
ही आत्मा के सञ्चित कर्मों को खपाने एवं आत्मा को शुद्ध करने के लि
की आवश्यकता है।

इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रख कर ही तपस्वीराज ने तपस्या
ओर अपनी प्रवृत्ति की है। आज उनकी आत्मा बलवती, ज्ञानवान्, स्वा
एवं वैयावृत्त प्रेमी हो चुकी हैं। उन्होंने तप के महत्व को खूब समझ कर
को अपनी रग-रग में भर लिया है। उन्होंने आत्मा के शत्रु क्रोध आ
कषायों को दमन करने के लिए कमर कस ली है। इसी कारण ये चातुर्मास
स्वतन्त्र न कर अपने आचार्यों के निकट ही करते हैं, बड़े २ सन्तों की सेवा
में रह कर उनकी सेवा का लाभ लेते हैं। यह उनका अपूर्व 'आदर्श' है।
हम भी तपस्वीराज का आदर्श सामने रख कर यथाशक्ति तप का आचरण
करना सीखें अर्थात् अपनी आत्मा की शक्ति को न छिपा कर यथाश
तप को अवश्य आदरना चाहिए।

तृतीय-प्रकरण

—x—

तपस्वी-गुणगान

(१)

श्री वीर प्रभु की कृपा से, छावनी में मङ्गल छाया है ।
'सुख मुनि' की सुधा सम वाणी से भवि मानव मन हर्षाया है ॥ टेर ॥

श्री मज्जैनाचार्य वरम्, विद्वान् शान्त स्वभावी परम् ।
पूज्य खूबचन्द्रजी सुख करम्, जिनने जगमें यश पाया है ॥ २ ॥

खिलवाने को मुरझाया सजर, भाईयों की अर्ज रख मद्दे नजर ।
कर दया दृष्टि परम पूज्य, चौमासे का हुक्म सुनाया है ॥ ३ ॥

हो गई छावनी पर महर नजर, दो मुनि पधारे दया सागर ।
पंडित सुखलालजी मुनि चतुर, संग घोर तपस्वी लाया है ॥ ४ ॥

नहीं मुनि का आना होता यहाँ, पहिला है चातुर्मास यहाँ ।
तिस पर भी हुआ उपकार महा, जिनधर्म चमन सरसाया है ॥ ५ ॥

मुनि छब्बालाल तपस्वी ध्यानी, सुयश नहीं कह सकती वाणी ।
तपस्या दिन ४४ ठानी, तन पर अति जोर लगाया है ॥ ५ ॥

जैनागम ही है तत्व सार, जिनधर्म का हो जग में प्रसार ।
जैनों में प्रेम हो सब प्रकार, यह अर्जी सेवक लाया है ॥ ६ ॥

मिथ्यात्व अंधेरा मिट जावे, अहिंसा पताका लहरावे ।
बंशी जगवासी सुख पावे, ऐसा प्रभुजी ने फरमाया है ॥ ७ ॥

(२)

श्री प्रभु वीर शासन की सदा जय हो सदा जय हो।
चतुर्विध सङ्घ की भारत में जय जय हो सदा जय हो ॥ टेर ॥

मिला मानुष भव उत्तम, औ सुसाधु का संगम।
मिला सुनना सुजैनागम, सदा जै हो सदा जै हो ॥ १ ॥

हुई पहिचान तत्वों की, मिटा मिथ्यात्व अंधेरा।
हुआ सम्यक्त्व सूर्योदय, सदा जै हो सदा जै हो ॥ १ ॥

छुटा संग कुगुरु कुदेव, और कुशास्त्र का सुनना।
मिला सुदेव गुरु और धर्म, सदा जै हो सदा जै हो ॥ ३ ॥

तपस्वी छब्बालालजी ने, कीनी बड़ो हिम्मत।
४४ दिन की तपस्या, सदा जय हो सदा जै हो ॥ ४ ॥

तपोधनधारी तपस्वियों की, बड़ी महिमा है भारत में,
पूज्य खूबचंद्रजी प्रसाद सुख कहता सदा जै हो सदा जै हो ॥ ५ ॥

(३)

खुशी का आता नहीं कुछ पार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ टेर ॥

छावनी गुड़गावां के मांय, कृपा कर आये दो मुनिराय।
संघ में छाया हर्ष अपार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ १ ॥
श्री मुनि सुखलालजी ज्ञानी, जिनकी मधुर बड़ी है बानी।
सुन खुश होते हैं नर नार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ २ ॥
तपस्वी छब्बालाल मुनिराय, तप दिन चँवालीस का ठाय।
सिर्फ गर्म पानी का आधार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ ३ ॥
चातुर्मास हुआ यहां पैला, जिससे दया धर्म बहु फैला।
गुरु के गुण गावें हरबार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ ४ ॥
जैन महिला समाज की अर्जी, कृपा कर सुनियो श्री गुरुवरजी।
उत्सव होता रहे हरबार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ ५ ॥

यह साल सत्तानवे आया, 'तोती' ने गाय सुनाया ।
गुरु के चरनन में बारम्बार, हुई सत्-धर्म की जय जयकार ॥ ६ ॥

(४)

तपस्या कीनी है चढ़ता भाव से, मुनि छब्बालालजी ॥ टेर ॥
पोरवाल वंश मांयने स रे, हुकमचन्द तुम तात ।
चाई बाई के ऊदर में स जी, प्रकट हुए तीन भ्रात ॥ मु० ॥ १ ॥
गृहस्थवास तज संजम लीना, साल अठन्तर मांय ।
गुरु भेट्या श्री छोटेलालजी, तपस्यावान् मुनिराय ॥ मु० ॥ २ ॥
गुरु और शिष्य हैं दोनो तपस्वी, और पूरे गुणवान ।
छब्बालालजी मुनि की तपस्या के, थोक सुनाउं सुजान ॥ मु० ॥ ३ ॥
गृहस्थवास से एक से लेकर, तेईस (२३) तप के थोक ।
केवल (२२) बाईस का हुआ नहीं है, सुनियो सज्जन लोक ॥ मु० ॥ ४ ॥
संजम लेकर करी तपस्या, उनका बताऊं नाम ।
पनरा, तीस, अरु इकतिस, तैंतिस, कीने भाव अभिराम ॥ मु० ॥ ५ ॥
रामपुरा में पैंतिस (३५) कीना, इकतालिस (४१) उज्जैन ।
जावरा शहर में अड़तालीस (४८) से, दीपाया मारग जैन ॥ मु० ॥ ६ ॥
जयपुर शहर मनोहर मांही, इक्कावन (५१) उपवास ।
किये प्रभावना हुई धरम का, श्रासङ्ग हुआ उल्लास ॥ मु० ॥ ७ ॥
साल छियासी रत्नपुरी में, फिर इक्कावन (५१) धार ।
विशुद्ध भाव से किया पूज्य श्री, खूबचन्दजी की लार ॥ मु० ॥ ८ ॥
तप उत्सव पर मुनि दर्शन को, हजारों नर नार ।
आये बेदसो गाँव से मिल कर, रत्नपुरी के मँझार ॥ मु० ॥ ९ ॥
महारानीजी अरज कराई, आहार लेने के तांई ।
तपस्वीजी महाराज पधारो, मुझ महलां के मांईजी ॥ मु० ॥ १० ॥
औसर देख पधारे पूज्य संग, लेने को मुनि आहार ।
जय जयकार हुई है धर्म की, बहुत हुआ उपकार ॥ मु० ॥ ११ ॥

अमता पलाया सारा शहर में, सज्जनसिंह दरबार ।
श्रीसंघ का उत्साह बढ़ा है, बोले जय जयकार ॥ मु० ॥१२॥
विद्वान् पूज्य श्री खूबचन्दजी, धैर्यवान गुणधारी ।
तास चरण की लेय मुनि 'सुख" कहता सभा मझारी ॥ मु० ॥१३॥

श्रीसङ्घ को बधाई

दोहा—दोहजार दो साल का, उदयापुर मंझार ।
चतुर्मास पूरण हुआ, सुणजो सब नर-नार ॥

(तर्ज—मारवाड़ी ख्याल की)

देऊं मै बधाई, मन में हरषाई, श्रीसङ्घ आपने ॥ टेर ॥

ज्ञान के सागर गुरुवर मेरे किस्तूरचन्दजी महाराज ।
पूरण पंडित पर-उपकारी, तारण तिरण जहाज ।
जैन धरम का मान बढ़ाते, मुनियों में सिरताज ॥ १ ॥

तपस्वी मुनि श्री छब्बालालजी संग में है विख्यात ।
भजनानन्दी मुनि व्यावची, प्रेमचन्दजी साथ ।
सेवा में रहते ये गुरु की, धन धन जांरी मात ॥ २ ॥

चार महीणा पूरण करके, कीना आज विहार ।
गुरुवर ने जो ज्ञान सुनाया, हिरदे लीजो धार ।
दान, शील, तप, भावना भा जो, ले प्रभु का आधार ॥ ३ ॥

माया बाया सबही यहाँ का, घणा घणा पुनवन्त ।
दिन दिन ज्योति बढ़े आपकी, भाषत चारों ही सन्त ॥
साधु सेवा अमृत मेवा, सहाय करे अरिहन्त ॥ ४ ॥

खमतखामणा सबसे करते, सुणजो चतुर सुजान ।
धरम-ध्यान में चित्त राखजो, शिक्षा हमारी मान ।
गुरु कृपा से छोगालाल मुनि, गावत है यह गान ॥ ५ ॥

समाप्त

विदाई-गीत

विषम वेदना हृदय चीरती, मुनि की आज विदाई है।
सुख की घड़ियाँ बीत चुकी अब दुख की घड़ियाँ आई हैं॥
संत समागम सुख का कारण दुखमय, आज जुदाई है।
दुखित हृदय रो रो पड़ता है, मुनि की आज जुदाई है ॥ १ ॥

अन्धकार का हटा आवरण उषा में लाली छाई।

पुस्तक मिलने का पता—

१. श्रीयुत् कालूलालजी लीलवाया,

जगदीश रोड, उदयपुर (मेवाड़)

२. श्रीयुत् कानमलजी नागोर वाला

श्री जैन महावीर मण्डल, मदनपोल,

उदयपुर (मेवाड़)